व्यावहारिक आध्यात्म

सन्त श्री भवानी शंकर (चच्चाजी)

परम सन्त श्री भवानी शंकर (चच्चा जी महाराज)

संरक्षक

परम सन्त कृष्णदयाल
पुराना कटरा, इलाहाबाद (उ.प्र.)

❊

प्रेरक एवं प्रकाशक

काशी प्रसाद श्रीवास्तव
सदाचार आश्रम
६२८, राजेन्द्र नगर
नवाँ मार्ग, लखनऊ (उ.प्र.)

❊

प्रबन्ध सम्पादक

ओम प्रकाश श्रीवास्तव
पी. सी.एस. (ए.डी.एम)
इलाहाबाद (उ.प्र.)

❊

सम्पादक

डॉ. रामस्वरूप खरे
५, प्राचार्य निवास,
राठ रोड, उरई (उ.प्र.)

❊

मुद्रक

आर. एस. प्रिंटिंग प्रेस
नया रामनगर, उरई
जिला-जालौन (उ.प्र.)

संरक्षक

सन्त श्री कृष्ण दयाल जी महाराज

संरक्षक के आशीर्वचन

पूज्य गुरुदेव श्री चच्चा जी महाराज एक उच्चकोटि के गृहस्थ सन्त थे। स्वयं की कठोर साधना और जीवन में आये असाध्य दुःखों का सामना करते हुये अल्पायु में ही वे अध्यात्म के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गये थे। उनके पूज्य गुरुदेव श्री लाला जी महाराज ने उनकी आध्यात्मिक स्थिति एवं पात्रता को देखते हुये उन्हें वह सब कुछ दे दिया था जिसके वे अधिकारी थे। तत्क्षण ही वे परमात्म स्वरूप हो गये। उनके सम्पूर्ण जीवन-दर्शन की दिव्य झलक (श्री ओम प्रकाश श्रीवास्तव, पी.सी.एस. ए.डी.एम., इलाहाबाद द्वारा प्रणीत चच्चा चालीसा) में देखने को मिलती है। किसी भी धर्म एवं सम्प्रदाय को मानने वाले जब कभी भाव-प्रेम एवं पूर्ण निष्ठा से इसका पाठ करेंगे तो उनमें सद-वृत्तियाँ स्वतः प्रस्फुटित होने लगेंगी तथा भगवत् सत्ता की अनुभूति होने लगेगी जिससे उनका आध्यात्मिक मार्ग प्रशस्त होगा।

वर्तमान युग में प्राणी सांसारिक उपलब्धियों को ही अपनी प्रगति का लक्ष्य मानकर उसी में लगा रहता है। उनकी पूर्ति के लिये वह छल-कपट, झूठ-बेईमानी आदि को भी गलत नहीं मानता जिससे सात्विक बुद्धि का निरन्तर अभाव होता जा रहा है। यही कारण है कि मनुष्य अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य को भूलता जा रहा है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो आध्यात्मिक मार्ग की कठिनाइयों के कारण उसे दुर्गम मान कर छोड़ देते हैं। इन्हीं सब तथ्यों को ध्यान में रखकर पूज्य गुरुदेव ने साधना में होने वाली कठिनाइयों को देखते हुये अपने शिष्यों के समक्ष आध्यात्म का एक ऐसा सरल एवं सहज रूप प्रस्तुत किया जो कि पूर्णतः कर्मकाण्ड एवं बाह्य आडम्बरों से रहित है। उनके बताये हुये आध्यात्मिक मार्ग पर चलकर सहज रूप में ही साधक जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इसी आधार पर उन्होंने आध्यात्म के व्यावहारिक पक्ष पर विशेष महत्व दिया और व्यावहारिक आध्यात्म की नींव रक्खी।

पूज्य गुरुदेव कहा करते थे मनुष्य जब जन्म लेता है तो आवरण-रहित होता है जैसे-जैसे वह सांसारिकता में फँसता जाता है उसके ऊपर काम,

क्रोध, लोभ मोह एवं अहंकार रूपी आवरण चढ़ने लगते हैं। साधक को अपनी साधना द्वारा इन आवरणों को हटाना है। पूज्य गुरुदेव ने साधना के दो पक्ष बताये हैं-

(१) आन्तरिक पक्ष (२) बाह्य पक्ष

बाह्य पक्ष में कर्तव्य-पालन, सदाचार, और आचरण की शुद्धता पर ध्यान देना है एवं आन्तरिक पक्ष में अभ्यास एवं साधना पर महत्व देना है। साधना के दोनों पक्षों में समुचित समन्वय से ही साधक आध्यात्म के चरमोत्कर्ष पर पहुँच सकता है। पूज्य गुरुदेव के बताये इस मार्ग के साधकों को न तो कठोर साधना करनी है, न गृहस्थ आश्रम को त्यागना है। पूज्य गुरुदेव में पूर्ण समर्पण भाव से अपने कर्तव्य का पालन करना है। सद्आचरण पर महत्व देना है और इसको अपने अभ्यास में लाना है। कहने का तात्पर्य यह है कि साधक के अन्दर कर्तव्य-पालन और सदाचार इतना व्याप्त हो जाना चाहिये कि जिसके साथ जैसा व्यवहार करना हो वह स्वतः ही होने लगे। इसी अभ्यास से जब साधक निष्काम भाव से बिना किसी पूर्वाग्रह के कर्तव्य-पालन करेगा तो उसके ऊपर से काम-क्रोध तथा अहंकार रूपी आवरण स्वतः हटने लगेंगे। साधक की समस्त इन्द्रियाँ भी भौतिक सुख के स्थान पर शाश्वत सुख में आनन्द लेने लगेंगी, साधक को, भाव प्रेम से सबमें ईश्वर का रूप देखते हुये सबकी सेवा करना है। साधना में 'मैं' और 'मेरा' कुछ नहीं है। सब कुछ ईश्वर का है ईश्वरमय है।

पूज्य गुरुदेव सत्संग समाप्ति पर अपनी आध्यात्मिक साधना के अनुभव के आधार पर कुछ उपदेश एवं अमूल्य बचनों को सबके समक्ष रखते थे जिसे संकलित कर 'व्यावहारिक-आध्यात्म' नामक पुस्तक में उद्घृत किया गया है। इन मन्त्रों में उनकी आध्यात्मिक शक्तियाँ व्याप्त हैं। साधक को उनके उन अमूल्य वचनों को जीवन में उतारना है और समय-समय पर अपना आत्म-निरीक्षण करते रहना है और यह देखना है कि पूज्य गुरुदेव के इन अमूल्य वचनों को, वह किस सीमा तक अपनी अन्तर्रात्मा में आत्मसात कर पाया है। नियम की पाबन्दी साधना में सफलता को अग्रसरित करती है।

अतः पुस्तक का प्रतिदिन नियम से पाठ करना आवश्यक है।

समयाभाव के कारण जो लोग साधना नहीं कर पाते हैं उन्हें कुछ समय निकाल कर प्रातः यह प्रार्थना अवश्य कर लेनी चाहिये कि 'हे ईश्वर! हमें इतनी शक्ति एवं सामर्थ्य प्रदान करें कि हम निःस्वार्थ भाव से सबकी ईश्वरीय रूप में सेवा करने में सक्षम हो सकें। रात में सोते समय यह आत्म-निरीक्षण करना आवश्यक है कि प्रातः की गयी प्रार्थना को वह स्वयं में उतार पाने में कितना सफल हुआ है और तदनुसार स्वयं में सुधार लाने का प्रयास करता रहे।

गुरुदेव सबका भला करेंगे।

कृष्णदयाल
संरक्षक

प्रकाश पर्व, लखनऊ
६-११-२००५

व्यावहारिक आध्यात्म

प्रत्येक मनुष्य को अपने स्वास्थ्य, गृहचर्या, विद्याध्ययन तथा जीविका इत्यादि को ठीक-ठीक व शुद्ध बनाने के लिये अपने स्वभाव, रुचि, व्यवहार, रहन-सहन, इत्यादि का शोधन करना आवश्यक है। इन बातों का शोधन सदाचार के आधार पर निर्भर है और सदाचार आत्मोन्नति या ईश्वर भक्ति पर अवलम्बित है। आत्मोन्नति तथा ईश्वर भक्ति का परिणाम ही सदाचार है जिसके विस्तार से मनुष्य अखिल विश्व या भगवान के विराट रूप जगत् की सेवा करते करते परमेश्वर के दर्शन तथा आत्मसाक्षात्कार का यथार्थ लाभ उठाकर अपने सहज रूप को प्राप्त होता है।

"जो कुछ लिखा जाता है, वह बहुत सोच-विचार कर लिखा जाता है, उसके पीछे अनुभव होता है जो कुछ कहा जाता है, वह बहुत सोच-विचार कर कहा जाता है उसके पीछे शुभचिन्तन होता है। जो शब्द पर ध्यान नहीं देता, वह कुछ नहीं कर सकता, शब्द का पालन करने वाला विरला ही होता है।"

प्रस्तुत पाठ "गृहचर्या में "नर-नारी सहयोग एवं गृहस्थी के उपयोगी नियम" पुस्तकों पर आधारित हैः

१. नित्यप्रति केवल ५ मिनट देने से एक पाठ पूरा हो जाता है। (इसमें कर्तव्य पालन और महिला सभ्यता व सदाचार एक ही पाठ में जा जाते हैं)। हर पाठ के ऊपर १ से ३१ दिन तक लिखा गया है।

२. ईश्वर कृपा से आशा है कि जो नर-नारी निरन्तर एक पाठ प्रतिदिन करते रहेंगे। उनके घर का वातावरण शुद्ध पवित्र तथा शान्तिमय रहेगा।

३. घर-घर में वैमनस्य एवं आपसी कलह शनै-शनैः मिटकर आपस में प्रेम-भाव बढ़ता जावेगा।

४. प्रत्येक दिन जो नर-नारी श्रीभगवान् की आराधना करते हैं। उनको अपने-अपने अभ्यास के समाप्त होते ही इस पुस्तक का पाठ बराबर करते रहना चाहिये। एक महीना के पूरे पाठ के बाद फिर से पहला पाठ शुरू करके आखिरी महीना तक एक-एक पाठ रोज करते रहना चाहिये। ऐसा कार्यक्रम निरन्तर जारी रखना है। प्रतिदिन की पूजा के साथ इस पुस्तक का एक पाठ पूजा का अंग बना लेना चाहिये।

५. नित्यप्रति जो श्रीभगवान् की पूजा नहीं कर पाते हैं उनको इस पुस्तक का एक-एक पाठ प्रातःकाल या सोने के समय तथा यथाशक्ति निश्चित समय पर करने से जो लाभ होगा उसको वे स्वयं ही अनुभव करेंगे।

६. घर में जितने भी पढ़े लिखे सदस्य हों सबको इसका पाठ लाभदायक होगा। जो व्यक्ति न पढ़े हों, उनको सुना देना चाहिये। बालक, बालिकायें, पुत्र-बधुओं, माताओं, बहिनों, युवा, वृद्ध सभी के लिये यह पाठ सदाचार के मार्ग की ओर आकर्षित करने वाला है।

७. घर के प्रत्येक प्रधान का कर्तव्य है कि घर में सभी का नित्य-प्रति इस पुस्तक के पाठ करने की प्रेरणा देते रहें और समय-समय पर यह भी देखते रहें कि इसके पाठ करने से घर के वातावरण में कितना सुधार हो रहा है।

भवानी शंकर

मनुष्य मे कितनी शक्ति है, यह कोई नहीं जान पाया मनुष्य और ईश्वर अत्यन्त निकट हैं, बीच में बाल भर का अन्तर है। जो इस अन्तर को निकाल पाते हैं। वह उस अनन्त शक्ति में मिल कर पूर्ण शक्तिवान बन जाते हैं। प्रभु में मिलकर प्रभुवत् हो जाते हैं।

पहला पाठ (१)

१. व्यवहार में सत्य और प्रिय शब्दों का प्रयोग करने के लिये किसी मंत्र, जाप ध्यान अथवा अभ्यास का साधन प्रतिदिन नियत समय पर निश्चित समय तक करना आवश्यक है।

घर की प्रत्येक वस्तु को साफ-सुथरी तथा ठीक-ठाक स्थान पर रखना चाहिये और सब घर वालों को ऐसा ही करने के लिये प्रेमभाव से आदेश करते रहना चाहिये।

२. स्वयं भूल-चूक तथा अनुचित व्यवहार होने पर शीघ्र से शीघ्र समय मिलने पर एकान्त में बैठकर गायत्री या राम नाम मन्त्र अथवा जिसका जो अभ्यास हो उसके द्वारा तुरन्त प्रायश्चित कर और भविष्य में ऐसी भूल-चूक न होने के लिये ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना करके जिसके प्रति भूल-चूक तथा अनुचित व्यवहार हुआ हो उससे करुणामय नम्रता पूर्वक क्षमा माँगे।

३. अपने प्रति दूसरों से भूल-चूक हो जाने पर उन्हें प्रेम दृष्टि से क्षमा कर दें और उनके भविष्य के यथार्थ कल्याण के लिये ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना करें।

४. घर में शुद्ध वायुमण्डल रखने के लिये छोटे-बड़े, नौकर-चाकर, सबके प्रति सेवा भाव से यथायोग्य प्रेम व नम्रता के साथ उदारता का व्यवहार करना चाहिये।

५. वे मातायें धन्य और जगतपूज्य हैं जो स्वयं नियमानुसार नित्यप्रति प्रातः, मध्यान्ह व सायंकाल ईश्वर उपासना करती हैं और अपनी मातृदष्टि तथा सदाचार द्वारा अपने पुत्र-पुत्रियों, पुत्र-बधुओं एवं घर के अन्य सम्बन्धियों से ऐसी ही साधना करातीं है।

६. जिस माता ने अपनी सन्तान को श्रीभगवान की उपासना द्वारा सभ्य सदाचारिणी बना दिया है उसने अपनी तथा अपनी माता की कोख को पवित्र करके समाज और देश की बड़ी सेवा की।

दूसरा पाठ (२)

१. अतिथि की यथायोग्य सेवा तथा सत्कार प्रेम और नम्रता के साथ करना चाहिये।

२. सन्तों की वाणी तथा उनका आदर्श जीवन चरित अभ्यास साधन में लाभकारी है।

३. संसारी पुरुषों को आत्मोन्नति तथा ईश्वर भक्ति में लगा देना बहुत बड़ी सेवा है।

४. निष्काम प्रेमभाव के बिना किसी पक्षपात तथा भेदभाव के प्रत्येक प्राणी की सेवा करना साक्षात ईश्वर की सेवा करना है।

५. संसार का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है, किन्तु ईश्वर भक्ति के बिना सुख की प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को किसी धार्मिक ग्रन्थ का पाठ, सत्संग तथा ईश्वर भक्ति के साधन नियमानुसार प्रतिदिन अवश्य करते रहना चाहिये।

६. सारा जीवन केवल धनोपार्जन और धन संचय में ही लगा रहने से मनुष्य अपनी आत्मशक्ति को नष्ट करके आत्महत्या करने वाले की गति को प्राप्त होता है।

७. जिस प्रेम और भाव से महिलायें अपने माता-पिता, भाई-बहिनों को चाहती हैं, उसी प्रेम भाव से जब वे अपने पति के माता पिता एवं भाई-बहिनों को चाहने लगेंगी तभी वे अपने पति की अर्धांगिनी कहलाने की अधिकारी हो सकती हैं। नित्यप्रति श्रीभगवान की उपासना करने से यह गुण प्राप्त हो सकता है। इसलिये प्रत्येक महिला का धर्म है कि गृहस्थी के अन्य आवश्यक कार्यों से भी अधिक श्री भगवान की उपासना को आवश्यक समझकर नित्यप्रति नियमानुसार निश्चित समय पर अपने धर्मानुसार श्रीभगवान की उपासना अवश्य करती रहें।

तीसरा पाठ (३)

१. जब कोई किसी की निन्दा कर रहा हो तो उसे मत सुनो। वहाँ से चल देना ही उस समय सबसे अच्छा उपाय है। अगर निंदा के शब्द कान में पड़ जावें तो उसका स्वाद न लेकर उसी समय तुरन्त ही दृढ़ता के साथ मन से कहो कि यह सत्य नहीं है और मन से उस समय तक जारी रखो जब तक कि वह शब्द तुम्हारे कान द्वारा निकल न जावे। अगर ऐसा प्रायश्चित न करोगे तो वह निन्दा के शब्द छूत की बीमारी की तरह तुम्हारे सारे शरीर में फैलकर असाध्य रोग पैदा कर देगें।

२. अवसर पाकर भी जो मनुष्य निर्धन, रोगी, अनाथ और दुखी प्राणी की यथाशक्ति सहायता नहीं करता है वह उन्हीं की गति को पाता है।

३. जो महिलायें अपने पति की कमाई तथा संपत्ति व अन्य वस्तुओं को उनके भाई, बन्धु तथा अन्य अधिकारियों की सेवा मे लगते हुए देखकर मन में कुढ़ती हैं तथा समय-समय पर आन्तरिक व प्रकट रूप से पति से कलह करती हैं और उनकी सेवा करने से पति को वंचित रखने के लिये नाना प्रकार की चुगली तथा अनेक प्रकार के जाल रचकर उनके प्रति अपने पति का हृदय दूषित कर देती हैं वे अपने पति की इहलौकिक एवं पारलौकिक मार्ग की यात्रा में विध्नकारक होकर अपने पति की महान शत्रु तथा आत्मघातक हैं। ऐसी दुराचारिणी महिलायें अपने जीते जी ही दारुण दुःख भोगकर अधोगति को प्राप्त होती हैं।

४. भोजन का परिणाम ईश्वर प्राप्ति है। सात्विक भोजन से सात्विक बुद्धि बनती है। सात्विक बुद्धि से विवेक उत्पन्न होता है जिससे ब्रह्म अथवा श्रीभगवान की प्राप्ति की जा सकती है। विवेकी बुद्धि ही धर्म है

चौथा पाठ (४)

१. अपने मन को कार्य रहित मत रखो, किन्तु सदा अच्छे विचार मन के ऐसे भाग में रहने दो कि जब-जब तुम्हारे मन को दूसरे कामों से अवकाश मिले तब-तब वे तुम्हारे सामने आकर खड़े हो जावें।

२. प्रतिदिन छोटे-छोटे कामों में दूसरों की सहायता करते रहने का अभ्यास बढ़ाते रहना चाहिये ताकि जब कभी बड़े काम में सहायता करने का अवसर मिले तो वह हाथ से न जाने पाये।

३. मन से दुःखों का चिन्तन न करना ही दुःख निवारण की अचूक दवा है।

४. प्रत्येक कार्य में नियम की पाबन्दी का उल्लंघन न होना एक बड़ा साधन है।

५. जिस तरह उपाय करने पर लकड़ी से अग्नि और दूध से घी निकलता है उसी तरह सत्संग तथा संतों की कृपा द्वारा अभ्यास व साधन से आत्म पद तथा ईश्वर भक्ति की प्राप्ति होती है।

६. कुटुम्ब, समाज, देश तथा संसार के कल्याण के लिये कन्याओं को जितनी सांसारिक विद्या तथा गृहकार्य की शिक्षा की आवश्यकता है उससे कहीं अधिक धार्मिक शिक्षा तथा आध्यात्मिक विद्या की आवश्यकता है क्योंकि वर्तमान समय के गृहस्थ आश्रम में पुरुषों की आत्मोन्नति तथा ईश्वर भक्ति स्त्रियों के पतिव्रत धर्म और सदाचार पर ही निर्भर है।

ईश्वर की भाषा शब्दों की नहीं होती ईश्वर की भाषा तो एहसास की भाषा है। मैं ईश्वर को अपने गहनतम, किन्तु क्षुद्र विनय का एहसास देता हूँ। ईश्वर भी मुझे अपने गहनतम आशीर्वाद का एहसास देता है।

भक्ति का एक ही स्वरूप है, अपनी इच्छा आकांक्षाओं को आराध्य के साथ घुला-मिला देना ही समर्पण है।

पाँचवाँ पाठ (५)

१. जिसने मनुष्य-शरीर पाकर भी ईश्वर भक्ति का प्रयत्न नहीं किया तो मानो उसने अपने आप ही नाश कर लिया।

२. सत्संग किए बिना केवल ग्रन्थ के अवलोकन द्वारा अभ्यास करने से सब साधन व्यर्थ जाते हैं, इसलिये ज्ञान व भक्ति प्राप्त करने के लिये अनुभवी महात्माओं के पास सत्संग अवश्य करना चाहिये।

३. जैसे-जैसे मनुष्य के पास धन बढ़ता जाता है वैसे-वैसे उसमें सद्गुण नष्ट होते जाते हैं और वह दयाशून्य होकर कातर व दुखी आत्माओं से सीधी बात नहीं करता, उसको उनके दुख नेत्रों से दिखाई नहीं पड़ते उनकी दीन-हीन पुकार उसको सुनाई नहीं पड़ती।

४. लोभी किसी के साथ नेकी नहीं कर सकता। वह दूसरों के साथ इतना नहीं होता जितना कि स्वयं अपने साथ।

५. शारीरिक, मानसिक और दैविक आपत्तिओं को सहन करने की शक्ति बिना ईश्वर भक्ति प्राप्त किये कदापि सम्भव नहीं।

६. प्रत्येक साधक को आत्मोन्नति तथा ईश्वर भक्ति के साधन का रोजाना का हिसाब उसी तरह रखना चाहिये कि जिस तरह नित्यप्रति सरकारी खजाने की आमदनी व खर्च का हिसाब खजांची रखता है।

७. जो मातायें संकुचित एवं मलिन स्वभाव के कारण अपनी संतान को मेरे तेरे पन की शिक्षा देती रहती हैं वे स्वयं अपने को एवं अपनी संतान को कुटुम्ब, समाज तथा देश का द्रोही बनाकर अधोगति को प्राप्त होती हैं।

८. महिलाओं का विशेष तथा महान कर्तव्य है कि वे धर्मानुसार अपने सास ससुर की प्रेम और भाव से सेवा करती रहा करें। सास ससुर की प्राप्ति प्रत्येक बहू को नहीं होती। महान् तपस्या तथा पुण्य के फल से सास ससुर मिलते हैं।

छटवाँ पाठ (६)

१. स्वार्थ त्याग में एक बहुत बड़े बल की बहुत बड़ी वीरता की आवश्यकता है।

२. रुपया-पैसा सच्चा धन नहीं है और न उससे कल्याण होता है। केवल धन का भरोसा करना चिकनी भूमि पर खड़ा होना है।

३. अपने ही स्वार्थ में अपना सारा समय लगाना दुर्बलता है और मृत्यु का आवाहन करना है।

४. निःस्वार्थ सेवा करने से आन्तरिक शक्ति की वृद्धि होती है और ईश्वरीय मार्ग में विशेष सहायता मिलती है।

५. जिसके हृदय से जितना ही अधिक स्वार्थ निकलता जायेगा उतना ही वह नम्र होता जायेगा।

६. वर्तमान समय में गृहस्थ आश्रम के लिये अतिथि सत्कार ही महान पुण्य एवं मुक्ति का साधन है। धर्मानुसार भाव और प्रेम सहित अतिथि सेवा महिलाओं की सभ्यता, सच्चरित्रता, पतिव्रत तथा सतीत्व धर्म पर निर्भर है। किसी के घर पर से अतिथि का असंतुष्ट होकर लौट जाना श्रीभगवान का निरादर करना है।

७. प्रत्येक महिला का धर्म है कि वह अपने धर्म के अनुसार सेवा करने और अपना पतिव्रत तथा सतीत्व धर्म की रक्षा करने की शक्ति प्राप्त करने के लिये श्रीभगवान की उपासना अवश्य करती रहा करें।

८. स्त्रियों की सुन्दरता उनके रूप की सुन्दरता तथा फैशनेबुल कपड़े पहनने तथा श्रृंगार करने एवं आभूषण पहनने में नहीं है किन्तु सदाचार, सदगुण तथा पतिव्रत धर्म पालन करने में है।

९. शुद्ध तथा पवित्र आचरणों द्वारा पति के वास्तविक सुख और शान्ति का साधन करने को पति सेवा कहते हैं।

सातवाँ पाठ (७)

१. जिसके घर में लड़ाई-झगड़ा होते हैं उसके घर के मनुष्य कदापि सभ्य नहीं कहे जा सकते हैं। इसलिये घरेलू कलह तथा झगड़े से बचने के लिये घर के प्रधान पुरुष तथा स्त्री का कर्तव्य है कि वे नित्य-प्रति नियमानुसार प्रार्थना करते रहें कि ईश्वर घर के सब प्राणियों को सुमति और सुबुद्धि दे।

२. चलते समय अपनी दृष्टि नीची रखनी चाहिये और यथासंभव उसे अपने लक्ष्य पर रखने का अभ्यास करते रहना चाहिये। इधर-उधर चन्चल दृष्टि रखकर चलना असभ्यता का लक्षण है।

३. बैठते समय हमेशा सीधे बैठने का अभ्यास रखना चाहिये। गर्दन नीची न हो और कमर झुकी न रहे।

४. यदि कहीं स्त्रियाँ बैठी हों तो पुरुष को वहाँ चुपचाप नहीं जाना चाहिये। यदि वहाँ जाना आवश्यक है तो कोई ऐसा शब्द कहकर आगे बढ़ें कि उन्हें पुरुष के आने की आहट मिल जावे।

५. यदि बाहर से कोई महिला घर पर आयीं हुयी हो तो गृह स्वामिनी का धर्म है कि उनके पास उपस्थित रहकर उनका यथायोग्य सम्मान तथा समयानुसार आदरपूर्वक व्यवहार एवं बातचीत करें। उस समय यदि कोई आवश्यक कार्य आ जाये तो उसके लिये घर पर आयीं हुई महिला से आज्ञा प्राप्त करके क्षमा माँग लेना चाहिये।

६. प्रत्येक सास जो बहू को उत्तम शिक्षा देने के बजाय उसकी त्रुटियों को उसके पति एवं ससुर को तथा अन्य स्त्री-पुरुषों को सुनाया करती है वह अपने भाग्य की अच्छी रेखाओं को मिटाकर अभाग्य की रेखा खींचती है और उसी के अनुसार घर में अभाग्य का प्रवेश कराती। ईश्वर की उपासना से घर के वातावरण में बहुत सुधार हो सकता है।

७. कन्याओं को अपने पारिवारिक भाइयों को छोड़कर अन्य व्यक्तियों को नहीं अपनाना चाहिये। माता-पिता तथा परिवार वालों को चाहिये कि वह सदैव दृढ़ता के साथ अपनी कन्याओं को सुरक्षित रखें।

आठवां पाठ (८)

१. जहाँ औरतें रहती हों उस जगह व्यर्थ ही ठहरना, घूमना, फिरना और बार-बार आना-जाना असभ्यता है।

२. यथार्थ कर्तव्य पालन करना वह है जिससे न अपना मन दुखी व दूषित हो और न दूसरे का।

३. किसी कार्य के लिये नियम बना लेना बहुत आसान है लेकिन उसके अनुसार काम करना कठिन है।

४. जिस तरह वृद्धावस्था पुरुष के सब सौन्दर्य हर लेती है वैसे ही विषय भोगों से पगा हुआ मन परमार्थ से सदा विमुख कर देता है।

५. ज्ञान ही सुख के भण्डार के कुन्जी है। अतः जिस तरह भी संभव हो उसे प्राप्त करना चाहिये।

६. सास का कर्तव्य है कि बहू आने के पहले वह बहू की माँ बन जावे। ऐसा होने से सास-बहू में वैसा ही प्रेम बना रहेगा जैसा कि माँ-बेटी में होता है। सास को चाहिये कि वह ईश्वरोपासना व प्रार्थना द्वारा बहू को अपनी पुत्री के समान बना लें। बहू को भी इतना सावधान होना चाहिये कि वह अपनी सास को अपनी माँ के समान ही प्रेम करने का साधन करती रहे। शनैः-शनैः साधन में सफलता अवश्य मिलेगी। बिना प्रेम के अनुशासन नहीं रहता है अतः सास का प्रेम बहू के प्रति अगाध होना चाहिये।

७. स्त्रियों को गैर पुरुषों के साथ अनावश्यक सम्पर्क स्थापित नहीं करना चाहिये। हाव-भाव, चटक-मटक एवं अश्लील हँसी मजाक भरे शब्द प्रयोग करने से स्त्री निर्लज्ज कहलाती है ऐसा होने से महिलाओं के सतीत्व के प्रति सन्देह उत्पन्न हो जाता है।

८. रास्ते में मिलते हुए अनेक गुण्डे एवं बदमाश लोग अश्लील बातें बककर स्त्रियों को देखकर चिढ़ाने की कोशिश करते हैं। स्त्रियों को चाहिये कि उनकी बातों को अनसुनी करते हुये अपने पति के ध्यान में या मन में राम-राम कहते हुये अपनी स्वयं ही रक्षा करती रहा करें।

९. जो स्त्री अपने पति की गुप्त बातों को प्रकट करती है वह अपने पति के तेज, आयु तथा बल का हनन करती है।

नौवाँ पाठ (९)

१. महात्मा लोग भवसागर से स्वयं पार होकर बिना कारण ही सहज स्वभाव से संसार समुद्र में डूबते हुये प्राणियों का उद्धार करने के लिये संसार में निवास करते हैं।

२. शरीर तथा मन से किसी प्राणी को किसी प्रकार का दुख न देना ही अहिंसा धर्म है।

३. सत्य बोलने का अभ्यास सिद्ध होने पर वाक्य सिद्धि हो जाती है। जो कुछ कहा जाये वह सिद्ध हो जाता है।

४. स्वार्थवश स्वधर्म तथा लज्जा का त्याग न करना चाहिये कुत्सित कर्मों का त्याग करना ही लज्जा है लेकिन लज्जा ही लज्जा नहीं है।

५. मूर्ख को सद्बोध का दान करना चाहिये जिससे उसका दुष्ट स्वभाव सुधर जाये।

६. नित्यप्रति नियमानुसार श्रीभगवान की उपासना करने से अनेक जन्मों के पापों का नाश हो जाता है और उसे श्रीभगवान के दर्शन अवश्य होते हैं।

७. पत्नी को चाहिये कि पति से कभी हठ न करे। यदि रुचि के अनुकूल कोई बात न भी हो सके तो किसी प्रकार का द्वेष मन में न आने दें। उसकी सेवा में कभी न होने दें।

८. जिसके पास सदाचारिणी धर्मपत्नी है उसके पितृगणों का उद्धार हो जाता है तथा वह संसार में माननीय एवं पूज्य है। सदाचारिणी स्त्री के द्वारा उसकी माता की कोख पवित्र हो आती है तथा पिता जीवन मुक्त हो जाता है।

९. पत्नी के लिये पति ही ब्रह्मा, पति ही विष्णु एवं पति ही महेश्वर है। अतः पत्नी यदि अन्य देवता की पूजा करती है तो वह अपने धर्म का पालन नहीं करती है। पति ही उसका साकार और निराकार ब्रह्म है।

१०. सदाचारिणी स्त्री अपने पति की सेवा करने से तीर्थ स्नान का फल सारी तपस्याओं तथा व्रतों का फल पाती है।

दसवाँ पाठ (१०)

१. निःस्वार्थता से ही समाज, जाति, कुटुम्ब आदि जीवित और कायम रह सकते हैं। निःस्वार्थ सेवा करने के लिये सदाचार की बहुत आवश्यकता है और जो बिना ईश्वर भजन के कदापि सम्भव नहीं।

२. सदाचार द्वारा ही सामाजिक जीवन की प्राप्ति हो सकती है क्योंकि सदाचार, भेदभाव, और पक्षपात को छोड़कर, सेवा करने की शिक्षा देता है। अतः सदाचार सामाजिक जीवन की कुन्जी है।

३. मनुष्य दरिद्री उसी समय तक रहता है तब तक उसको केवल अपने ही पेट पालनें और अपने ही दुःख की चिन्ता रहती है।

४. दुःख, कष्ट या आपत्ति में ग्रसे हुए, शत्रु को भी सच्चे मन से यथाशक्ति सहायता करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है।

५. माताओं का धर्म है कि वे अपने पुत्रियों तथा पुत्रों की ओर से सावधान रहते हुये देखती रहें कि उनमें त्रुटियाँ न पड़ने पावें। उनके सदाचार एवं ब्रह्मचर्य की खासतौर पर कड़ी निगरानी रखे।

६. बच्चों के साथ जो खेलने वाले या पढ़ने वाले लड़के हों उनका भी चाल चलन जानते रहना चाहिये। क्योंकि दुराचारी लड़कों के साथ अच्छे लड़के भी कुसंगत में पड़कर बिगड़ जाते हैं।

नाना प्रकार के यत्न करने पर भी मनुष्य दैहिक, दैविक और भौतिक तापों, भयंकर आपत्तियों और कष्टों व दुःखों से छुटकारा नहीं पा रहे हैं। इसकी केवल एक ही औषधि है, वह है ईश्वर की शरणागति। ईश्वर की शरणागति सन्त की कृपा पर निर्भर है।

ग्यारहवाँ पाठ (११)

१. जो सब साधन प्राप्त होते हुये भी अपने भाई, बन्धु, कुटुम्बी, सम्बन्धी इत्यादि की हीन दशा में उनकी बुराइयों का मनन करके उनकी सहायता करने से वंचित रहता है, उसके व्रत, तीर्थ, दान, पुण्य एवं पूजा-पाठ इत्यादि सब साधनों का फल पापों में परिवर्तित हो जाता है।

२. दिन-रात गृहस्थी के कामों में लिप्त रहने से मनुष्य के मन में बुरी भावनायें उठती रहती हैं जो शनैः-शनैः हृदय में अपना घर करके सत्संग तथा महात्माओं के प्रति अरुचि पैदा कर देती हैं।

३. सत्संग की प्राप्ति तथा महात्माओं और संतो की कृपा कोई खिलौना या अल्प पुण्य का फल नहीं है जो प्रत्येक मनुष्य को आसानी से मिल सके।

४. सांसारिक सुख और दुःख के पालन करने की शक्ति बिना श्रीभगवान् की उपासना के कदापि सम्भव नहीं, इसलिये इसपर विजय पाने के लिये प्रत्येक मनुष्य को नित्यप्रति नियमानुसार श्री भगवान की आराधना अवश्य करते रहना चाहिये।

५. पति की त्रुटियाँ हटाने की जिम्मेदारी पत्नी की है। और पत्नी की त्रुटियाँ हटाने की जिम्मेदारी पति की है। यदि दोनों एक साथ बैठकर निश्चित समय पर ईश्वर से त्रुटियों को हटाने की प्रार्थना करेंगे तो अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

६. मनुष्य अपनी पत्नी को पतिव्रता देखना चाहता है उसी प्रकार स्त्री भी अपने पति को स्त्रीव्रता देखना चाहती है। जब तक ऐसा न होगा तक तक स्त्री और पति में पवित्र प्रेम कदापि सम्भव नहीं है।

> जाति हमारी बृह्म है, मात पिता हैं राम।
> गेह हमारा सून्य में, गुरु चरनन विश्राम।।
> – काशीप्रसाद श्रीवास्तव

बारहवाँ पाठ (१२)

१. जिस स्थान पर श्रीभगवान की कथा, कीर्तन, सत्संग, ज्ञानचर्या हो रही हो तो वहाँ बातचीत करना, कानाफूसी करना पाप है।

२. सज्जनों की संगत से कभी दूर न होना चाहिये, विनयपूर्वक उनका सम्मान करना चाहिये। सज्जन के हृदय-कमल की रज फैलकर शीघ्र ही उसके पास बैठने वाले के सब पाप नष्ट कर देती है।

३. सर्व प्रथम व्यक्ति परिवार से ही प्रेम करने का पाठ सीखता है। यही प्रेम क्रमशः बढ़कर ग्राम, नगर, खण्ड, तहसील, जिला, प्रान्त राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार परिवार ही प्रेम की प्रथम पाठशाला है।

४. किसी की सिधाई का खून करके उससे लाभ उठाना उसके साथ विश्वासघात करना है। क्योंकि किसी की सरलता से लाभ उठाना उसको धोखा देना है।

५. किसी काम की सफलता के लिये दिन-रात उधेड़बुन में रहने तथा चिन्ता करने से मानसिक व शारीरिक शक्ति नष्ट हो जाती है, इसलिये चिन्ता छोड़कर ईश्वर पर विश्वास करके उसकी सफलता के लिये यथासम्भव प्रयत्न करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म है।

६. यदि मनुष्य किसी स्त्री को बुरी दृष्टि से देखेगा तो उसकी स्त्री भी निश्चय ही किसी व्यक्ति के द्वारा देखी जायेगी।

> जीव का अहंकार ही माया है यही अहंकार कुल आवरणों का कारण है। यदि ईश्वर की कृपा से "मैं अकर्ता हूँ" यह ज्ञान हो गया तो वह मनुष्य जीवन मुक्त हो गया। फिर उसे कोई भय नहीं है।

तेरहवाँ पाठ (१३)

१. नित्य-प्रति किसी निश्चित समय पर बचपन से अब तक के जीवन की मानसिक परिक्रमा करने पर मनुष्य वैराग्य रूपी आश्रय पाकर श्रीभगवान के कमल स्वरूपी चरणों में दृढता के साथ प्रेम करने लगता है।

२. सत्संग से बढ़कर मनुष्य के कल्याण के लिये और कोई उत्तम वस्तु नहीं है। सत्संग से ज्ञान होने पर माया दुखदायी के बदले सुखदायी हो जाती है। भगवान के भक्त माया के अधीन नहीं होते, किन्तु माया स्वयं उनके सामने सेवा करने के लिये हाथ जोड़े खड़ी रहती है, परन्तु श्री भगवान के भक्तों को उसकी ओर देखने का अवकाश ही नहीं है।

३. परिवार वालों से प्रेम करना ईश्वरीय प्रेम करने का सरल व सुगम साधन है। जिसने अपने परिवार वालों से प्रेम नहीं किया वह प्रेम प्राप्त कष्ट व दुखों का अनुभव न होने के कारण प्रेम के रहस्य से वंचित रहता हैं

४. प्रत्येक मनुष्य को कुछ उपयोगी कार्य नित्य-प्रति अवश्य करते रहना चाहिये। बेकार रहने से मनुष्य दूसरों के अवगुण और दोषों को देखते रहने का अभ्यासी बन जाता है, जिसके कारण वह स्वयं दोषी व दुराचारी हो जाता है ऐसे मनुष्यों को प्रायश्चित का साधन करते हुए अपने कल्याण तथा उद्धार के लिये श्रीभगवान की उपासना तथा सत्संग नित्य-प्रति अवश्य करते रहना चाहिये।

५. यदि पत्नी मन-कर्म-वचन से पातिव्रत धर्म के व्रत का भाव और प्रेम से पालन करेगी तो उसके इस व्रत का प्रभाव पति पर ऐसा पड़ेगा कि वह भी अपने पति को स्त्रीव्रता पावेगी।

> शास्त्रों और धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन में चाहे जीवन व्यतीत कर दिया जावे, परन्तु परम तत्व की प्राप्ति बिना सदगुरु की कृपा के सम्भव नहीं है।

चौहदवाँ पाठ (१४)

१. किसी के गुप्त रहस्य को जो प्रगट नहीं करना चाहता उसको उचित तथा अनुचित उपाय से सुनने के लिये प्रयत्न करना तथा किसी के द्वारा उसके गुप्त रहस्य का पता लगाने का उपाय करना पाप है श्रीभगवान का स्वभाव है कि वे किसी के ऐब, दोष, पाप तथा गुप्त रहस्य को न देखते हैं न किसी के द्वारा सुनना ही चाहते हैं, इसलिये श्रीभगवान के भक्तों को भी ऐसी ही साधना करते रहना चाहिये।

२. संसार की प्रत्येक वस्तु में भय भरा पड़ा है, निर्भयता केवल वैराग्य तथा निष्काम कर्म में है जिसकी प्राप्ति श्रीभगवान की उपासना के बिना कदापि संभव नहीं है।

३. जब तक मनुष्य जिये तब तक उसे भवसागर से पार होने के लिये श्रीभगवान की प्राप्ति के हेतु किसी न किसी प्रकार का अभ्यास तथा साधन अवश्य करते रहना चाहिये। क्योंकि जीवन की प्रत्येक श्वाँस अमूल्य है। जब देह भस्म हो गयी तो पश्चाताप का भी अवसर नहीं मिलता।

४. समय को अमूल्य समझकर प्रत्येक श्वाँस की भाव सहित श्रीभगवान के स्मरण तथा ध्यान में लगाये रहने का अभ्यास तथा साधन करते रहने से मनुष्य को सदाचार की प्राप्ति होकर यथार्थ कर्त्तव्य पालन तथा सेवा करने की शक्ति प्राप्त होती है।

५. यदि किसी कारण वश सास-बहू को ताना देती है तो उसे यह याद रखते हुये चुप रहना चाहिये कि उसे उत्तम वस्तु "पति" की प्राप्ति सास के द्वारा हुई है।

> ईश्वर सर्वगुण सम्पन्न है। अतः भाव सहित नित्यप्रति श्रीभगवान की साधना करने से श्रीभगवान और साधक में अटूट सम्बन्ध होजाता है और साधक में ईश्वरीय गुणों का प्रवेश होने लगता है। अतः नित्यप्रति निश्चित समय पर ईश्वर की साधना अवश्य करते रहना चाहिये।

पन्द्रहवाँ पाठ (१५)

१. कंगाल होने से भलमनसाहत जाती नहीं और धनवान होने से भलमनसाहत आती नहीं। भलमनसाहत केवल सदाचार में है। इसलिये सदाचार की प्राप्ति के लिये नित्यप्रति निश्चित समय पर श्रीभगवान की उपासना करते रहने में ही भलमनसाहत है।

२. निर्धनी होते हुये भी श्रीभगवान के भक्तों को अतिथि सत्कार में कोई बाधा नहीं पड़ सकती क्योंकि उनके पास आसन के लिये पवित्रभूमि पाँव धोने तथा पीने के लिये स्वच्छ जल और गद्‌गद तथा सत्य प्रिय वाणी द्वारा संतुष्ट करने का अभाव कभी नहीं रहता।

३. श्रीभगवान के भक्तों की आदर्श जीवनचर्या तथा सदाचार भगवत्‌ रूप होकर संसार के कल्याण का कारण है।

४. जक तक शब्द अथवा वचन वाणी से नहीं निकलते तब तक वह मनुष्य के वश में रहते हैं परन्तु मुँह से निकलते ही मनुष्य को उनके आधीन हो जाना पड़ता है जो मुँह से निकले हुए वचन का पालन करता है वह मनुष्य है और जो शब्द का पालन नहीं करता वह अपनी मनुष्यता का नाश करता है।

५. माता का धर्म है कि बालपन से ही कन्या का ससुराल के व्यक्तियों से किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, इस प्रकार की शिक्षा देते रहना चाहिये कि सभी प्रकार से उसका पति तथा घर के अन्य सम्बन्धी संतुष्ट व प्रसन्न रहें।

> 'अहं की भावना व्यक्ति को अभिमानी बनाती है। अतएव अहं का परित्याग करके मनुष्य को सरलता और विनम्रता सीखनी चाहिये। मानव-जीवन अनमोल है। इसे पाकर यदि ईश्वर की साधना और उपासना की है तब तो मानव जीवन की सार्थकता है अन्यथा फिर चौरासी लक्ष्य योनियों में भटकते हुये जन्म-मरण की कष्ट प्रद यातनायें भोगनी पड़ेगी'।

सोलहवाँ पाठ (१६)

१. सदाचार और दुराचार का विचारों से घनिष्ट सम्बन्ध है। विचारों की उत्पत्ति मन से है इसलिये सभ्य तथा सदाचारी बनने के लिये मन को श्री भगवान के चरणों में लगाकर अच्छे कार्यों की ओर प्रेरित करना चाहिये।

२. मन को पवित्र, निर्मल रखने से दिव्य शक्तियाँ तथा गुणों का विकास होता है। अपवित्र मन मनुष्य को दुराचार और कुपथगामी बनाता है। मन को पवित्र बनाने के लिये सत्य-पालन और अहिंसा मुख्य साधन है।

३. नित्य-प्रति नियमानुसार भाव और प्रेम के साथ श्रीभगवान की उपासना करने से अन्तकरणः शुद्ध होता है। अन्तःकरण शुद्ध होने से मन पवित्र होता है। मन के पवित्र होने से सत्य-भाषण और अहिंसा का साधन स्वतः ही होने लगता है।

४. जो सच्चे सुख की चाहना रखता हो उसे दीन, अनाथ, दुखियों और पीड़ित प्राणियों की निःस्वार्थ सेवा करते हुए उनके हृदय मन्दिर में अपने इष्टदेव श्रीभगवान के दर्शन करते रहना चाहिये।

५. प्रायः मातायें अपनी कन्याओं को उच्च्य आदर्श की शिक्षा तो देती रहती हैं किन्तु घरेलू कामों की ओर ध्यान नहीं देतीं जिसके अभाव में बहू के माता-पिता की आलोचना का अवसर आ जाता है।

> जैसे घर के भीतर रखे दीपक का प्रकाश सभी दरवाजों और खिड़कियों द्वारा बाहर प्रतीत होता है इसी प्रकार हृदय में परम ज्योति का प्रकाश अनुभव होने पर बाहर सभी इन्द्रियों में प्रतीत होने लगता है।

सत्रहवाँ पाठ (१७)

१. जो मनुष्य एकान्त स्थान में श्रीभगवान की उपासना द्वारा मन शान्त करने का अभ्यास नियमानुसार प्रतिदिन करता रहता है, उसे बैचेनी के स्थान में शान्ति और दुर्बलता के स्थान में ईश्वरीय शक्ति प्राप्त होती है।

२. जो मनुष्य वास्तव में सच्चा सुख और चैन चाहता हो उसे धन की ओर से चित्त हटाकर श्रीभगवान द्वारा हृदय शुद्ध करके सर्वशक्तिमान निरन्तर एक समान रहने वाले श्रीभगवान पर भाव और प्रेम सहित श्रद्धा रखते हुये निःस्वार्थ जनसेवा करने का साधन करते रहना चाहिये।

३. यथार्थ में धनवान मनुष्य वह है जिसके पास द्रव्य तो नहीं है किन्तु पारमार्थिक तथा निःस्वार्थ सेवा के गुण बहुत से हैं। दूसरों के दुःखों को दूर करने और उनको लाभ पहुँचाने में जो सच्चा सुख मिलता है वह धन द्वारा प्राप्त भोग बिलासों में कदापि नहीं।

४. जहाँ कष्ट और दुःख अधिक होते हैं और जहाँ उनसे बचने के साधन नहीं जुटते वहीं मनुष्य की बुद्धि का विकास होता है और वहीं मनुष्य को ईश्वर में दृढ़ विश्वास होता है।

५. प्रत्येक पिता का धर्म है कि कन्या को ऐसी शिक्षा दें जिससे वह माता-पिता के कुल को कलंकित न करें।

> जिसके पास धीरज है वह जो कुछ भी इच्छा करता है हासिल कर लेता है।

अठारहवाँ पाठ (१८)

१. जो चतुराई तथा छल छोड़कर सच्चाई के साथ श्रीभगवान की प्राप्ति के हेतु आध्यत्मिक अभ्यास तथा साधन में प्रतिदिन लगा रहता है उसे प्रति मिनट और प्रति धण्टा ईश्वरीय मार्ग में सफलता मिलती रहती है।

२. श्रीभगवान की भक्ति ही सबसे श्रेष्ठ धन है और वही परमानन्द तथा पूर्ण शान्ति का स्थान है। अतएव प्रत्येक प्राणी का धर्म है कि वह श्रीभगवान की भक्ति की प्राप्ति के लिये नित्यप्रति किसी न किसी प्रकार का कोई एक आध्यात्मिक अभ्यास तथा जनसाधारण की निःस्वार्थ सेवा करते रहने का साधन अवश्य ही करता रहे।

३. जिस प्रकार धनवान को अपने धन का, पहलवान को अपने बल का, विद्यावान को अपनी विद्या का, और राजा को अपने राज्य का बल रहता है वैसे भक्त को अपने इष्टदेव श्रीभगवान का बल रहता है।

४. भाव और प्रेम सहित श्रीभगवान का स्मरण और ध्यान करने से मनुष्य आत्मबल द्वारा निर्भयता के साथ अधिक से अधिक कष्टों, दुःखों और प्रत्येक प्रकार की असुविधाओं पर विजय प्राप्त करते हुए लौकिक एवं आध्यात्मिक दिव्य शक्तियों को अपने आधीन करके भगवान का सच्चा भक्त बन जाता है।

५. माता-पिता का धर्म है कि अपनी पुत्री को पति का महत्व समझाते हुये उसके सास-ससुर का महत्व भी उसके हृदय में भली भांति अंकित करा दें।

> जैसे हल्दी और चूना मिलाने से रंग गहरा हो जाता है। ऐसे ही जब प्रेमी जन आपस मे मिलते हैं तो प्रेम दूना हो जाता है।

उन्नीसवाँ पाठ (१९)

१. जो मनुष्य किसी प्राणी का अनिष्ट चिन्तन नहीं करता और अपने शत्रुओं की उन्नति पर प्रसन्न होता है वही सदाचारी तथा श्रीभगवान का सच्चा भक्त है।

२. अपने इष्टदेव श्रीभगवान की रुचि के प्रतिकूल जो मनुष्य अपनी चतुराई और चापलूसी से बहुतों को अपना बनाने का प्रयत्न करता है वह स्वतः अपने को नष्ट करने के साथ ही साथ बहुतों के हनन होने का कारण बनकर आत्म हत्यारों की गति को प्राप्त होता है।

३. माता-पिता को किसी भी दशा में तथा कभी भी साधारण मनुष्य नहीं समझना चाहिये। पिता की सेवा से जगत-पिता श्रीभगवान और माता की पूजा से जगत-माता श्री जगदम्बा सन्तुष्ट होती हैं ? इनकी यथाविधि सेवा किये बिना लौकिक, पारलौकिक एवं किसी भी धर्म-कार्य में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिये भाव और प्रेम सहित माता-पिता की सेवा करना साक्षात श्रीभगवान के सगुण रूप की पूजा करना है।

४. जिस बहू ने अपनी सास को संतुष्ट नहीं किया उसका भविष्य उज्ज्वल होने की आशा न करनी चाहिये और न पति ही यथार्थ में उससे संतुष्ट रह सकता है।

> जैसे दियासलाई के अन्दर अग्नि व्याप्त है, परन्तु प्राप्त रगड़ से ही हो सकती है। इसी प्रकार, परमात्मा सर्वत्र व्यापक है, परन्तु भजन से ही प्राप्त होता है।

बीसवाँ पाठ (२०)

१. मनुष्य जैसी संगति करता है उसी के अनुसार परिणाम को प्राप्त होता है, जैसे कि स्वाँति की बूँद कदली में पड़ने से कपूर, सीप में पड़ने से मुक्ता और साँप के मुँह में पड़ने से विष हो जाती है एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वभाव वालों के संग में पड़ कर तीन प्रकार के फलों का प्राप्त होती है। अतएव सदाचारी ईश्वर भक्त और सन्तों की संगत करके श्री भगवान को प्राप्त कर लेना चाहिये।

२. सच्ची प्रार्थना भाव और प्रेम सहित श्रीभगवान अथवा उसके अनन्य भक्त से एक ही बार करने से उसका फल तत्काल मिलता है। सच्ची प्रार्थना करने की शक्ति प्राप्त करने के लिये नित्यप्रति नियमानुसार श्रीभगवान की उपासना करते रहना चाहिये।

३. प्रत्येक मनुष्य को अपने हृदय में यह भलीभाँति अंकित कर लेना चाहिये कि प्रार्थना का मुख्य उद्‌देश्य पवित्र जीवन व्यतीत करना और श्रीभगवान को प्राप्त करना है।

४. स्वार्थी और कृतघ्नी मनुष्य उसी समय तक अपने सम्बन्ध तथा मित्रता का परिचय दे सकता है, जब तक मूल रूप में उसके स्वार्थ की सिद्धि और ब्याज रूप से उसे मान-बड़ाई प्रतिष्ठा को प्राप्ति होती जावे। उसके अभाव में वह भयंकर शत्रु होकर मृत्यु से भी अधिक दुःख दायी होता है।

५. माँ अपने लड़के से हाथ पैर की सेवा नहीं कराना चाहती। पुत्रबधू द्वारा माँ की सेवा पुत्र की सेवा समझी जाती है।

> जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है। उसे वैसा ही आचरण भी करना चाहिये। जैसे कोई सुमति और सुबुद्धि की प्राप्ति के लिये श्रीभगवान से प्रार्थना करता है, तो उसे चाहिये कि यथाशक्ति सुमति और सुबुद्धि की उन्नति का नित्यप्रति साधन भी करता रहे।

इक्कीसवाँ पाठ (२१)

१. भाव और प्रेम सहित श्रीभगवान के नाम का जाप करते रहने से जाप करने वाले के हृदय-मन्दिर में श्री भगवान वास करने लगते हैं।

२. जब कोई मनुष्य श्रीभगवान की उपासना तथा पूजा कर रहा हो तो उस समय आवश्यक कार्य होने पर भी किसी को उसके सामने न जाना चाहिये और न ऐसी कोई बात-चीत, शब्द तथा आहट को प्रयोग में लाना चाहिये कि जिससे उसका मन पूजा से विचलित हो जावे। क्योंकि उस समय वह एक ऐसे की सेवा में है जिससे बढ़कर सारे ब्रह्माण्डों में दूसरी कोई दिव्य तथा उत्तम शक्ति नहीं है।

३. जिस स्थान पर सत्संग, पूजा, पाठ, उपदेश ज्ञान चर्चा तथा श्रीभगवान की कथा का निरूपण हो रहा हो वहाँ किसी से बातचीता करना या कानाफूसी करना महान पाप तथा असभ्यता है। ऐसे पवित्र स्थान पर पहुँच कर चुपचाप बैठ कर अपने महान पुण्य का उदय समझ कर सत्संग लाभ प्राप्त करने में ही अपना सारा समय व्यतीत करना चाहिये।

४. श्रीभगवान की उपासना के प्रभाव से जो मनुष्य अपनी जिह्वा को अपने वश में कर लेता है वह सारी लौकिक एवं पारलौकिक इच्छाओं और विषय भोगों को अपने आधीन करके निर्भय पद तथा ब्रह्मानन्द को प्राप्त होता है।

५. सास का धर्म है कि जिस प्रकार उसने अपने पुत्र का लालन-पालन किया उससे भी अधिक बहू के सदाचार की वृद्धि के लिये साधन कराती रहे।

साधना का प्रभाव व्यवहार में नहीं आता तो सारे साधन व्यर्थ हो जाते हैं अतः सदाचार के गुण व्यवहार में उतारना आवश्यक है।

बाइसवाँ पाठ (२२)

१. जो मनुष्य अपने सुख तथा स्वार्थ की पूर्ति के लिये कारण अथवा अकारणवश किसी भी प्राणी का दिल दुखाता है उस दुखे हुए तथा पीड़ित दिल से उसके दिल दुखाने वाले के सुख और स्वार्थ का जड़ मूल से नाश हो जाता है और वह नरकगामी होकर अधोगति को प्राप्त होता है इसलिये किसी दशा में तथा किसी परिस्थिति में किसी प्राणी के दिल दुखाने का कारण नहीं बनना चाहिये।

२. प्रत्येक छोटे व बड़े काम में तथा साधारण व असाधारण विपत्ति व संकट में ईश्वर का स्मरण करने से बहुत शीघ्र मन में विलक्षण बल आ जाता है। इसलिये शारीरिक और मानसिक पीड़ाओं और दुःखों से बचने के लिये भाव और प्रेम सहित निरन्तर अपने इष्टदेव श्रीभगवान का स्मरण करते रहना चाहिये।

३. केवल उच्च पदों पर काम करने तथा धनवान होने से कुल उत्तम नहीं कहा जा सकता। वंश कुल एवं खानदान वहीं उत्तम और जगत पूज्य है जिसमें श्रीभगवान की भक्ति की वृद्धि होकर निःसहाय और दुःखी प्राणियों की भाव और प्रेम सहित निरन्तर सेवा होती रहती है।

४. वह सत्यता और ईमानदारी किसी काम की नहीं जिसमें नम्रता, प्रेम और निःस्वार्थ सेवा की वृद्धि न हो। सत्य और ईमानदारी के प्रकाश में यदि स्वार्थ और अन्धकार का नाश न हो तो वह सत्यता और ईमानदारी कदापि नहीं है किन्तु धोखा के रूप में असत्य और हिंसा ही है।

५. सास वही उत्तम है जो अपनी बहू को अपनी कन्या से कम ने समझे। प्रेम के द्वारा सी सास बहू को अपने घर के वातावरण में मिला सकती है।

प्रार्थना हृदय के कपाट खोलती है ताकि ईश्वर को उसमें प्रवेश करने का अवसर मिल सके।

तेईसवाँ पाठ (२३)

१. प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि अपने पुरुषार्थ से अपना निर्वाह करे। जो अपने सम्बन्धियों तथा अन्य लोगों के बल पर जीवन निर्वाह करता है अथवा उनके नाम से यश और कीर्ति प्राप्त करता है वह पुरुषार्थ हीन हो जाता है और अपने कल्याण मार्ग से गिर कर अधोगति को प्राप्त होता है।

२. धार्मिक, पारमार्थिक और आध्यात्मिक कामों के नाम पर धन बटोरना और फिर उनको उन सत्कार्यों के बजाय अपने मनमाने तथा निजी कामों मे खर्च करना, धन देने वालों को साफ धोखा देकर विश्वासघाती, कृतघ्नी तथा महान पातकी बनाता है।

३. ईश्वरीय नियम है कि श्रीभगवान की उपासना के पश्चात मनुष्य जिस इच्छा की पूर्ति के लिये प्रार्थना करता है वह अवश्य स्वीकृत होती है इसलिये मनुष्य को बहुत सावधान होकर के ऐसी इच्छाओं की पूर्ति के लिये प्रार्थना करनी चाहिये जो जन्म-मरण के चक्कर में न डालकर सच्चे सुख और निरन्तर आनन्द देने वाली हों।

४. पूर्णता केवल श्रीभगवान में है। मनुष्य श्रीभगवान का अंश है इसलिये मनुष्य में किसी न किसी प्रकार की कमी का रहना स्वाभाविक ही है। किसी भी प्रकार की कमी को पूरा करने का सरल व सुगम उपाय यह है कि मनुष्य जितना दूसरों की आवश्यकताओं और कमी को पूरा करने का साधन करता रहेगा उससे कई गुने अंशों में उसकी आवश्यकता तथा कमी श्रीभगवान की कृपा से स्वतः ही पूरी होती जायेगी।

५. जो बहू अपनी सास की सेवा भाव और प्रेम के साथ नहीं करती समय आने पर उसकी बहू भी उसके साथ ऐसा ही वर्ताव करेगी जैसा कि वह अपनी सास के साथ कर रही है। अतः बहू को केवल सावधानी के साथ अपने सदाचार का परिचय ससुराल वालों को देते रहना चाहिये।

> क्षण भर के रोने में जो बात होती है वह बरसों के पूजा भजन में नहीं होती।

चौबीसवाँ पाठ (२४)

१. प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि पहले वह वर्णाश्रम धर्म के अनुसार काम करे उसके पश्चात श्रीभगवान की उपासना करे। इन दोनों क्रियाओं के मिलित साधन से शरीर और मन दोनों पवित्र होकर सदाचार और श्रीभगवान की अटूट भक्ति प्राप्त होती है।

२. रोने से हृदय का सन्ताप दूर होता है। संसारी मनुष्यों के सामने रोने से मनुष्य पुरुषार्थहीन, तेजहीन, तथा बुद्धिहीन होकर मनुष्यता से गिर जाता है। परन्तु श्रीभगवान के सामने रोने से मनुष्य के जन्म-जन्मान्तर के पाप एक ही घड़ी में धुलकर वह ऐश्वर्य तथा श्रीभगवान को प्राप्त होताहै। इसलिये संसारी मनुष्यों के सामने झींका-झाँकी करना तथा रोना छोड़कर अपने हृदय की सब प्रकट एवं गुप्त बातें एकान्त में श्रीभगवान को ही सुनानी चाहिये।

३. विद्यार्थियों को चाहिये कि जब कभी घर से पैसे मिलें तो उन्हें बचाकर दीन, दुर्बल और निर्धन विद्यार्थियों को दें। ऐसे विद्यार्थियों को स्वयं सेवा करना और माता-पिता के द्वारा भी उनके दुःख दूर करने की चेष्टा कराने वाले विद्यार्थियों से श्रीभगवान बहुत प्रसन्न होते हैं और उनके अंतःकरण को पवित्र करके उनकी सब इच्छाओं को पूरा करते हैं।

४. माता-पिता का धर्म है कि कन्या को वाल्यावस्था से ही सदाचार के साँचे में ऐसे ढालते जावें कि जब वह अपनी ससुराल पहुँचे तब वह ससुराल वालों के वातावरण, रीति-रिवाजों में ऐसी ढल जाये कि अपने पति तथा सास-ससुर और परिवार के सभी सदस्यों के हृदय में प्रेम की पात्र बन जाये।

> "हे ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो' यह महामन्त्र आध्यात्मिक जीवन का दिव्य तारा है। जो इसके प्रकाश में चलता है, इस पद को प्राप्त होता है। दिन और रात में जब खाली हो, जब मौका मिले यही जाप मन ही मन में बराबर करते रहना चाहिये। कुछ दिनों में इसका लाभ अनुभव होगा।

पच्चीसवाँ पाठ (२५)

१. विद्यार्थियों का धर्म है कि वे माता-पिता, वृद्धों और गुरुओं की पूजा तथा सेवा करने की साधना करने के साथ ही साथ श्रीभगवान की पूजा भी सीखते जायें। श्रीभगवान की पूजा से सदाचार की प्राप्ति होकर विद्या तथा ऐश्वर्य की दिन-प्रतिदिन उन्नति होती जाती है।

२. अपने पर कितनी विपत्ति आये तो भी श्रीभगवान की उपासना नहीं छोड़नी चाहिये। विपत्ति तथा संकट-काल में भी श्रीभगवान के स्मरण से ही कठिन समय को सहन करने की शक्ति प्राप्त होती है। ऐसे समय में मूक तथा हार्दिक प्रार्थना से बड़ी सहायता मिलती है।

३. जो आयु में, पद में, प्रतिष्ठा में अपने समान हों और आपस में शिष्टाचार तथा प्रणाम का व्यवहार चालू हो तो सदा दूसरे द्वारा पहिले प्रणाम की आशा नहीं रखना चाहिये। भलमनसाहत और सभ्यता इसी में है कि पहले ही आप उनसे प्रणाम कर लें।

४. अपने पूजनीय तथा वयोवृद्ध यदि विशेष प्रेम, आदि के कारण आपका सम्मान करने के लिये प्रणाम करें तो इस बात की विशेष प्रकार से सावधानी रखनी चाहिये कि उन्हें आपसे पहले प्रणाम करने का अवसर ही न मिलने पाये। तात्पर्य यह है कि वे प्रणाम करें उसके पहले ही उनको प्रणाम कर लेना चाहिये।

५. जिस तरह से पति ही स्त्री के लिये ईश्वर है उसी प्रकार स्त्री भी पति की शक्ति है। शक्ति का आभास करते हुए स्त्री को सब प्रकार से संतुष्ट रखना पति का कर्तव्य है।

> जब तक माया का आधार बना हुआ है तब तक कर्मों का त्याग हो ही नहीं सकता।

छब्बीसवाँ पाठ (२६)

१. श्रीभगवान की उपासना से स्मरण शक्ति तो इतनी बढ़ती है कि थोड़े समय में मनुष्य बहुत से विषयों को कंठाग्र और हृदयस्थ कर लेता है। इसलिये विद्यार्थियों को अपने पात्रानुसार भाव और प्रेम सहित श्रीभगवान की उपासना विशेष प्रकार नित्य प्रति अवश्य करना चाहिये।

२. जिस काम के करने में भय, शंका और लज्जा का अनुभव न हो उस काम के करने से आत्मोन्नति और सदाचार की प्राप्ति होती है। जिस काम के करने में भय, शंका और लज्जा का अनुभव हो उससे अधर्म की वृद्धि होकर आत्म-बल नष्ट हो जाता है और मनुष्य दुराचारी तथा पापी होकर अधर्म को प्राप्त होता है।

३. किसी सजीव सुख-दुख का अनुभव करने वाले प्राणी को मारकर खाने की इच्छा ही मनुष्य में हिंसा-वृत्ति और पाशविक भाव उत्पन्न करती है। अतः जो अपने जीवन में आध्यात्मिक उन्नति अथवा श्रीभगवान की भक्ति प्राप्त करना चाहते हों उन्हें माँस-मछली आदि का त्याग कर ही देना चाहिये।

४. अपने घर आये का यदि वह शत्रु भी हो तो भी तिरस्कार तथा अनादर करना महान असभ्यता तथा पाप है। घर पर आये हुए शत्रु का भी प्रेम पूर्वक शिष्टाचार तथा सत्कार वैसा ही करना चाहिये जैसा कि सर्वसाधारण के साथ किया जाता है।

५. पति का धर्म है कि अपनी पत्नी को अपने माता-पिता की सेवा का स्मरण कराते हुए तथा उसको योग्य बनाने में जो उन्होंने कष्ट उठाया है उससे परिचित कराता रहे और पत्नी को ऐसी प्रेरणा दें कि पत्नी पति के माता पिता से उतना स्नेह करने लगे जितना कि अपने माता-पिता से प्रेम करती रही है।

> सबसे प्रेम करना ही सदाचार है।

सत्ताइसवाँ पाठ (२७)

१. पूर्व और दक्षिण की ओर सिर करके सोने से शारीरिक और मानसिक व्यथायें दूर होती हैं। पश्चिम और उत्तर की ओर सिर करके सोने से मस्तिष्क शक्ति क्षीण होकर सिर के व मानसिक तथा शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार पूर्व और उत्तर की ओर पूजा, पाठ, ध्यान, धारण आदि देव-कार्य करने से आत्मोन्नति तथा श्रीभगवान की शक्ति में वृद्धि होती है।

२. प्रणाम करने की भारतीय प्रथा दोनों हाथ जोड़ना और वयोवृद्धों तथा पूजनीयों के भाव और प्रेम सहित पैर छूना है। सिर को एक हाथ लगाकर सलाम करने की प्रणाम करने की पद्धति असभ्य, तिरस्कार तथा अमंगलमय है। बच्चों को भारतीय प्रथा के अनुसार प्रणाम करने का अभ्यास कराते रहने से जीवन पर्यन्त वे सदाचारी तथा सर्वप्रिय होते हैं।

३. सन्ध्या वन्दन, गायत्री जाप अथवा महामंत्र के जाप व तर्पण नित्य करने से बुद्धि सबल और सात्विक होती है। सब पाप जो काम, क्रोध, मोह, लोभ, दम्भ, अहंकार, कपट, लम्पट, छल, छिद्र से उत्पन्न होते हैं वे नाश हो जाते हैं और श्रीभगवान की सच्ची भक्ति प्राप्त होती है।

४. पति को अपनी स्त्री को भाव और प्रेम के साथ यह दीक्षा देते रहना चाहिये कि उसे अपने सास-ससुर से अपनी कठिनाइयों को इस प्रकार रखना चाहिये कि जिस तरह से अपने मायके में अपने माता-पिता के सामने रखती रही है। सास-ससुर ऐसा सुनकर प्रसन्न होगें और सहानुभूति के साथ उन कठिनाइयों को दूर करते रहेगें।

शाश्वत प्रेम भाव ही जीवन की परिभाषा है।

अट्ठाइसवाँ पाठ (२८)

१. अपने या अपने से श्रेष्ठ वर्ण के वृद्ध मनुष्यों को सामने आते देखकर उनको भाव और प्रेम सहित प्रणाम करना चाहिये। उन्हें बैठने के लिये आदरपूर्वक आसन देना चाहिये। शील और नम्रता के साथ उनसे बातचीत करना चाहिये। जब वे चलने लगें तो आदर के साथ उनको कुछ दूर तक पहुँचा देना चाहिये। रास्ते में यदि भेंट हो और उनके साथ चलना पड़े तो उनकी प्रतिष्ठा रखते हुए उनके पीछे चलना चाहिये।

२. आध्यात्मिक अभ्यास तथा श्रीभगवान की पूजा करने में जिस साधन से शान्ति व आनन्द प्राप्त हो उसको नई प्रथा तथा सभ्यता के पुरुषों की देखा-देखी अथवा किसी के कहने, सुनने पर कदापि नहीं छोड़ देना चाहिये। यदि उनसे उत्तम ज्ञान मिलता हो तो उसे अपने में मिला लेना चाहिये।

३. नित्यकर्म तथा सन्ध्यावन्दन आदि शुभकार्य अभ्यासी तथा साधक के लिये जितने आवश्यक हैं। उनसे कहीं अधिक सिद्ध तथा महापुरुष के लिये आवश्यक है इसलिये सन्ध्यावन्दन तथा नित्यकर्म प्रत्येक श्रेणी के मनुष्यों को यानि प्रथम श्रेणी से लेकर आखिरी श्रेणी तक के सभी पुरुषों को नित्यप्रति अवश्य करते रहना चाहिये।

४. सास ससुर का धर्म है कि यदि पुत्रबधू से कोई भूल-चूक हो जाये तो प्रेम और भाव के साथ उस गल्ती को समझाते रहें और साथ ही साथ ईश्वर से प्रार्थना भी करते रहें कि वे त्रुटियाँ जो बहू मे हैं दूर हो जायें।

विनम्रता ही महापुरुष होने की पहली परख है।

उन्तीसवाँ पाठ (२९)

१. अपनी भूल-चूक अनुचित कामों एवं दूषित कर्मों के लिये हार्दिक दुःख के साथ पश्चाताप करने तथा भविष्य में फिर ऐसे दूषित कर्मों के न करने का दृढ़ संकल्प करने से सब दूषित कर्मों तथा पापों का प्रायश्चित हो जाता है और भविष्य के लिये श्रीभगवान की कृपा से सुबुद्धि तथा सुमति प्राप्त होकर शांति तथा सुख के देवताओं की सहातया से वह श्रीभगवान के समीप पहुँच जाता है।

२. जब मनुष्य मानसिक विचारों से ऊब जाता है तो वह निर्दोष जीवन व्यतीत करने लगता है। निर्दोष तथा पवित्र जीवन ही सच्ची शांति है जिसकी प्राप्ति आत्म संयम तथा श्रीभगवान की भक्ति से ही प्राप्त होती है।

३. मन के कहने पर चलने से मनुष्य शक्तिहीन, दुःखी और संसार के लिये अनुपयोगी बनता है। यदि सच्चे सुख की चाहना हो तो सन्देह करना, राग-द्वेष, घृणा, ईर्ष्या करना और विकारों के वशीभूत होना छोड़ देना चाहिये। दृढ़ता के साथ मन को किसी को अर्पण कर देने पर ही ऐसी साधनाओं का होना सम्भव है।

४. सास का भी धर्म है कि यदि बहू में कोई त्रुटियाँ हों तो घर के किसी भी व्यक्ति के सामने उसकी त्रुटियों को न बतावें किन्तु एकान्त में उसको स्नेहपूर्वक समझाती रहें।

इष्टदेव के शब्दों को आज्ञा का पालन करना ही नाम है। महामंत्र भी यही है जो सन्त का वचन हो, आदेश हो। इसको सब नहीं समझते, केवल अधिकारी ही समझ सकते हैं।

तीसवाँ पाठ (३०)

१. मनुष्य पर कितनी ही विपत्ति आये तो भी उसे धैर्य नहीं छोड़ना चाहिये। आपत्ति के समय में हार्दिक प्रार्थना, गीता पाठ, और तुलसीकृत रामायण से बड़ी सहायता मिलती है। इससे श्रीभगवान पर विश्वास होकर कठिन समय को सहन करने की शक्ति प्राप्त होती है।

२. जो मनुष्य सदाचारी तथा पुण्यात्मा बनना चाहता है, उसे अपने जीवन का अमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहिये। जो भक्ष्याभक्ष्य और संगद्वेष के कारण आलिस्य में पड़कर अपने समय को नष्ट करते हैं वे अपने जीवन के ध्येय को नष्ट करते हैं। खाली समय खोने से बढ़कर मनुष्य का अनर्थ करने वाला और कोई शत्रु नहीं है।

३. विश्वासघाती, कृतघ्नी, दुराचारी तथा नीचों की संगति से सदैव बचते रहना का यत्न करते रहना चाहिये। मलिन, पापी और नीच स्वभाव के मनुष्यों के संसर्ग से मनुष्य पतित होकर उन्हीं के गुण और स्वभाव को प्राप्त होते हैं।

४. जो मनुष्य अपने वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध आचरण करता है तथा झूठ और अन्याय द्वारा जीविका उपार्जन करता है वह संसार के दिखावे के लिये चाहे जितने ही धार्मिकपन के चिन्ह धारण करे परन्तु ईश्वरीय मार्ग पर कदापि नहीं चल सकता।

५. प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि उसकी स्त्री पतिव्रता बने और साथ ही साथ वह यह भी चाहता है कि उसकी बहिन, पुत्री, पुत्रबधू इत्यादि-इत्यादि उससे सम्बन्धित सभी सदाचारी एवं स्त्रीव्रता बनें। इतना ही नहीं वह यह भी चाहता है कि उसके लड़के, भाई, भतीजे इत्यादि सदाचारी एवं एक स्त्रीव्रता बनें ऐसा बनना उसी हालत में सम्भव है जब ऐसा चाहने वाला व्यक्ति स्वयं ही सदाचारी एवं स्त्रीव्रता बने और ब्रह्मचर्य के महत्व को भलीभाँति समझते हुये उसकी साधना करता रहे।

६. जो व्यक्ति किसी परस्त्री को बुरी दृष्टि से देखकर उससे भ्रष्टाचार करेगा या करने का उपाय करेगा उसको दृढ़ निश्चय रखना चाहिये कि उसकी

माता भी दूसरों के द्वारा बुरी दृष्टि से देखी जाकर भ्रष्टाचार की गति को प्राप्त होगी। यदि इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में उसको ऐसी ही माता प्राप्त होगी। पुनर्जन्म का सिद्धान्त हमारे ऋषि मुनियों द्वारा अटल माना गया है। अब विदेशियों ने भी इसकी (पुनर्जन्म की) पुष्टि की है।

७. बहू का धर्म है कि अपनी सास की विश्वास -पात्र बनने के लिये कोई ऐसी बात न छिपावे कि जिसके मालूम होने पर सास को बुरा लगे।

सदगुरु का वास हमारे अन्तःकरण में सगुणरूप में विराजमान रहता है। उनके प्रकाश में काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी अन्धकार ऐसे भाग जाते है जैसे सूर्य के प्रकाश में चमगादड़ व उल्लू।

इकतीसवाँ पाठ (३१)

१. जो व्यक्ति किसी युवा स्त्री से अनुचित सम्बन्ध रखेगा उसकी बहिन या स्त्री भी दूसरों द्वारा बुरी दृष्टि से देखी जाकर भ्रष्टाचार का रूप धारण करेगी।

२. जो दूसरों की कन्याओं एवं पुत्रबधुओं इत्यादि को देखकर उनको भ्रष्टाचार की ओर ले जावेगा उसके लिये यह निश्चित है कि उसके घर की कन्या और पुत्रबधुयें इत्यादि भी उसी आक्रमण का शिकार बनेंगी जैसा कि वह औरों के ऊपर ऐसा आक्रमण करने का साधन करता है।

३. बीज जैसा बोया जाता है समय पाकर उसका वैसा ही फल अवश्य उत्पन्न होता है। देर-सबेर भले ही लगे परन्तु प्रकृति का नियम अटल है।

४. कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करे सो तस फल चाखा।।

इस सिद्धान्त के अनुसार कर्म बिना फल दिये नहीं रहता। श्रीभगवान जिसकी जैसी प्रबल इच्छा होती है उसकी रुचि को अवश्य पूरी करते हैं। यदि चोर को चोरी करने की प्रबल इच्छा है तो उसको चोरी करने में अवश्य सफलता मिलती है। डाकू को डाका डालने में, कतल करने में, रिश्वत लेने वाले को रिश्वत लेने में, धोखा देने वालों को धोखा देने में, भ्रष्टाचारी को भ्रष्टाचार करने में सफलता मिलती है। इसी के साथ ही साथ जो जैसा करता है उसको प्रकृति के कानून के अनुसार दण्ड अवश्य भोगना पड़ता है। इसलिये मनुष्य का धर्म है कि वह कुसंग से बचकर सत्संग का अवलम्बन करके अधोगति प्राप्त होने से बचता रहे।

५. प्रत्येक मनुष्य से गलतियाँ होती रहती हैं कुछ जानकर और कुछ बिना जाने। परतु सब वह अपने वजन की होती हैं। श्रीभगवान का सहज स्वभाव है कि वह किसी की गलतियों को नहीं देखते परन्तु प्रकृति के नियम अनुसार जो जैसी गलती होती है, उसका फल अवश्य भोगना

पड़ता है। ऐसी गलतियों से भोगने से बचने के लिये यदि मनुष्य स्वयं ही अपनी गलती को गलती समझकर उससे ग्लानि करने लगे और ऐसा करते समय उसे उन गलतियों से घृणा होने लगे तथा श्रीभगवान से हार्दिक प्रार्थना क्षमा प्रदान करने के लिये करे और प्रार्थना करते-करते उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे तो श्रीभगवान उस गलती को केवल क्षमा ही नहीं कर देते हैं किन्तु उस गलती का संस्कार जड़मूल से नष्ट कर देते हैं। भविष्य में फिर उससे वही गलती नहीं होने पाती और उसको उस गलती का इस जन्म में या अगले जन्म फल भी नहीं भोगना पड़ता। ऐसा होने पर गलती करने वाले का मन इतना निर्मल हो जाता है कि जिसके प्रति वह गलती करता है उससे वह स्वयं अपनी गलती प्रकट करके क्षमा का प्रार्थी बनता है ऐसा होनेपर जिसके प्रति वह गलती करताहै वह उसको क्षमा ही नहीं करता किन्तु अपना सच्चा मित्र मानने लगता है। ऐसा करने से दोनों के हृदय पवित्र हो जाते हैं।

६. श्रीभगवान जब किसी की गलती को क्षमा करते हैं तब जिसके प्रति गलती को जाती है वह पहले ही से गलती क्षमा करने को तैयार रहता है।
७. पति का धर्म है कि जब तक स्त्री को अपना विश्वासपात्र न बना ले तब तक उसको अपने गुप्त भेद को कदापि नहीं बताना चाहिये।

... मन एक अखण्ड वस्तु है, जैसा कि योगी कहते हैं। मन विश्वव्यापी है। तुम्हारा मन, मेरा मन, ये सब विभिन्न मन उस समष्टि मन के अंश मात्र हैं, मानो समुद्र पर उठने वाली छोटी-छोटी लहरें हैं, और इस अखण्डता के कारण ही हम अपने विचारों को एकदम सीखे बिना किसी माध्यम के आपस में संक्रमित कर सकते हैं।

आत्म-निरीक्षण

वर्तमान युग में देखते हैं कि बहुधा प्राणी सांसारिक उपलब्धियों को ही अपनी प्रगति का लक्ष्य मानकर उसी प्रकार के क्रिया-कलापों में लिप्त रहता है। यही कारण कि उसके मन में लोभ, मोह, स्वार्थ आदि प्रवृत्तियाँ इतनी बलवती हो जाती हैं कि वह उनकी पूर्ति के लिये हर सम्भव-असम्भव प्रयास करता रहता है। छल,कपट झूठ, बेइमानी, चोरी, हिंसा आदि करके भी वह अपने को गलत नहीं मानता और इन कार्यों को आवश्यक समझने लगा है। जिससे सात्विक बुद्धि का निरन्तर अभाव होता जा रहा है। तामसी प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है यही कारण है कि बुद्धिजीवी अभावग्रस्त और एकाकी पड़ता जा रहा हैं और अनैतिक तत्व हर प्रकार से सम्पन्न एवं समर्पित दिखाई देते है किन्तु वास्तविक रूप से वह क्षुब्ध दिखाई देते और यह सब कुछ दिनों में उसकी मानसिक शान्ति छीन लेते हैं।

भावों की पवित्रता मानसिक शुद्धि से आती है और बिना उसके सुख शान्ति सम्भव नहीं है। हमें मानसिक सन्तोष प्राप्त करने के लिये विचारों और भावों को पवित्र रखना होगा। अपनी शुचिता के लिये आत्म-परीक्षण आवश्यक है। मन की शुद्धि के लिये कुछ महत्वपूर्ण उपाय निम्न प्रकार हैं-

१. शुद्ध आहार।
२. ईश्वरोपासना।
३. कर्तव्य-पालन।
४. परोपकार।

अतः हमें नियमपूर्वक एकान्त में बैठकर कुछ क्षण आत्म-निरीक्षण के लिये देना चाहिये। हमको यह देखना है कि आज हमने क्या भोजन किया; उसका दैनिक जीवन में क्या प्रभाव पड़ा, किस प्रकार के विचार आये, पूजा में क्या हालत रही, दिन भर क्या, गलतियाँ कीं और अपने कर्तव्य का दायित्व किस सीमा तक पालन किया, ऐसा करने में क्या त्रुटियाँ हुईं। दिन भर की पूरी स्थिति की समीक्षा करनी है फिर उसके लिये प्रायश्चित करना एवं ईश्वर से प्रार्थना करना कि हमसे जो त्रुटियाँ हुईं हैं उनको वह क्षमा करें

और मेरे ऊपर पूरी निगरानी रखें ताकि वह त्रुटियाँ दुबारा न हों। यह क्रिया रात को सोते समय और दूसरे दिन प्रातः उठने पर करनी होगी। इस सम्बन्ध में पूज्य गुरुदेव ने एक पुस्तक "नर-नारी सहयोग" लिखी है। इसके मुख्य अंश 'व्यावहारिक आध्यात्म' पाठ में साधकों की सुलभता के लिये दिये गये हैं। जिनका निरन्तर पाठ करने से उनको लाभ होगा और ईश्वरीय सहायता प्राप्त होती रहेगी।

आत्म निरीक्षण से प्राणी को आत्म-शुद्धि का बीज मंत्र प्राप्त होता है और निरन्तर अभ्यास करते-करते नये स्वर्ण की भाँति अपने मन को शुद्ध कर लेता है।

कृष्णदयाल

सदगुरु कोई चमत्कार नहीं दिखाते। वे साधक की सांसारिक इच्छाओं को पूर्ण करने के बजाय उन इच्छाओं को जड़मूल से नष्ट कर देते हैं। अपने आत्मबल द्वारा उसे इतनी शक्ति प्रदान करते हैं कि वे अपने प्रारब्ध कर्मों के कष्टों को आसानी से भोगते हुये ईश्वरीय मार्ग से विचलित न हों।

आत्मानुभूति के ११ दोहे

चच्चा शंकर रूप हैं, सत्गुरु हैं श्री राम।
राम नाम के जपन ते, दोउ भये एक समान।।१।।

चच्चा महिमा अगम है, मनोबुद्धि के पार।
होय समर्पण भाव जब, क्षण में हो उजियार।।२।।

काम क्रोध मद मोह सब, उर से देहु निकार।
तभी समाती हृदय में सत्य प्रेम की धार।।३।।

शून्य जगत में 'रम रहे, सुने शब्द झंकार।
साक्षी भाव विचार कर, देखे सब संसार।।४।।

ज्योतिः आत्म प्रकाश की अन्तर में दर्शाय।
स्थित प्रज्ञ हो रम रहे भाव अद्वैत लखाय।।५।।

बाहर-भीतर एक है, सब में गुरु जी समाय।
बाहर क्षण भंगुर दिखे, अन्तर अलख जगाय।।६।।

गुरु चरणन में लीन हो नख दुति लेउ समाय।
दिव्य दृष्टि हो हृदय में, भाव अलौकिक आय।।७।।

राम नाम में लीन हो, तन-मन की सुध खोय।
अँधियारो सब दूर हो, मन उजियारौ होय।।८।।

मन के निर्मल होत ही, सदगुरु आप समाय।
अहं भाव के छूटते, निज स्वरूप दरशाय।।९।।

सेवा धर्म समान नहिं, जग में धर्म न अन्य।
स्वार्थ रहित जो कर सके, उन सम कोइ न धन्य।।१०।।

मन्दिर, मसजिद सभी में, जड़ स्वरूप भगवान।
जो जड़ में सद्गुरु लखे, चेतनं दिखे महान।।११।।

(परमसन्त श्री भवानी शंकर 'चच्चा जी' के अनन्य भक्त काशीप्रसाद प्रसाद द्वारा रचित)

साधना

साधना का अर्थ है प्रयत्न करना, लगना। साधना का अर्थ सिद्धि भी है। आत्मानुसंधान के मार्ग में अपनी आत्मा को परमात्मा में लीन कर "पूर्णमदः पूर्णमिदम" की अनुभूति के पथ में हमारी जो कुछ भी आत्मिक चेष्टायें होती हैं, उन सबका नाम साधना है। नदी की धारा ऊँचे उठती है, नीचे ठलती है, वन-पर्वत को लांघती हुई बढ़ती जाती है। क्यों, किसलिये ? इसलिये, कि अन्त में अपने आपको समुद्र की गोद में सुला दे, लीन कर दे, मिटा दे। मनुष्य की आत्मा भी भाग्य के उतार-चढ़ाव, सुख-दुख, हर्ष-विषाद और ऐसे ही जीवन के विविध खट्टे-मीठे अनन्त अनुभवों को पार करती हुई सतचित् और आनन्द के एक अनन्त महासागर में अपने आपको डाल देने के लिये व्याकुल है, बेचैन है। नदी का लक्ष्य है समुद्र और मनुष्य का लक्ष्य है भगवान।

सन्त श्री भवानी शंकर (चच्चा जी महाराज)

आरती

आरती सद्गुरु चरनन की, करहु मन-नख दुति किरनन की।
नयन कमलन की अनुहारी
है चितवन पाप-ताप हारी
लाल है पान, अजब मुस्कान
श्रवण को अमृत बचनन की करहु मन-नख दुति किरनन की।
हृदय है दया क्षमा भण्डार
करन सों करत अधम उद्धार
दरस की आस, हरत भव त्रास
नाव दृढ़ भव निधि उतरन की, करहु मन-नख दुति किरनन की।
नाभि ले जमुन भँवर छवि छीन
देख कटि केहरि छवि भई हीन
लेत हैं पीर, बँधावत धीर
काम गज मन-वन विहरन की, करहु मन-नख दुति किरनन की।
चरण-नख ज्योति लख लीजे
दयालु मो पै दया कीजे
चन्द्र नख किरण, हृदय की फिरन
दया की भीख भिखारिन की, करहु मन-नख दुति किरनन की।
चरन-रज अमृत रस कर पान
होत भव रोग नाश दुख खान
खुलेगें नैन मिले सुख-चैन
निरन्तर गुरु जी के दर्शन की, करहु मन-नख दुति किरनन की।
आरती सद्गुरु चरनन की, करहु मन-नख दुति किरनन की।

*

श्री गुरुदेव जय गुरुदेव सद्गुरुदेव जय-जय गुरुदेव

हमारी दैनिक प्रार्थना

- ❊ हे भगवान ! हमारे बड़े से बड़े नेता से लेकर छोटे -से छोटे सभी नेताओं को और बड़े से बड़े कर्मचारी से लेकर छोटे-से छोटे सभी कर्मचारियों को सुमति व सुबुद्धि दे तथा घर-घर में सदाचार का वास हो।
- ❊ हे भगवान ! सारे संसार का वायु-मण्डल शुद्ध, पवित्र सुख और शान्ति का देने वाला हो।
- ❊ हे भगवान ! आप सर्वशक्तिमान हैं। आपकी दया व कृपा से ऐसा ही हो, ऐसा ही हो, ऐसा ही हो।

ॐ शान्ति ! ॐ शान्ति !! ॐ शान्ति !!!